कांग्रेस: अंदर की कलह, बाहर की अपेक्षाएं

प्रेम सिंह

(1)

फरवरी-मार्च में संपन्न हुए पांच विधानसभा चुनावों में कांग्रेस के अति निराशाजनक प्रदर्शन के बाद पार्टी में आतंरिक कलह तेज़ हुई है. दूसरी तरफ राजनीतिक पंडित, अन्य पार्टियों के नेता, राजनीतिक रूप से जागरूक नागरिक भविष्य की राजनीति के लिए कांग्रेस की भूमिका पर सवालिया निशान लगा रहे हैं. सवालिया निशान लगाने वालों में एक अखिल भारतीय राजनीतिक पार्टी के रूप में कांग्रेस से वाजिब अपेक्षाएं रखने वाले लोग भी शामिल हैं. ये दोनों मुद्दे - अंदरूनी तकरार और भविष्य की राजनीति में कांग्रेस की भूमिका - एक-दूसरे से जुड़े हैं. कांग्रेस के नेहरू-युग के बाद के इतिहास को देखते हुए यह लगता नहीं कि पार्टी गांधी परिवार को छोड़ कर अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करेगी. इन चुनाव परिणामों के बाद भी अगर कांग्रेस परिवार-मुक्त नहीं होती है, तो नरेंद्र मोदी कांग्रेस-मुक्त भारत के अपने 'मिशन' को और तेज़ करेंगे. कांग्रेस के विशाल अस्थि-पंजर में जो बचा-खुचा मांस है, उसे नोचने के लिए आम आदमी पार्टी की होड़ और तेज़ होगी. बल्कि पंजाब में मिली भारी जीत के बाद हो गई है. जो गैर-एनडीए नेता 2024 के लोकसभा चुनावों के लिए कांग्रेस के नेतृत्व में क्षेत्रीय पार्टियों का गठबंधन चाहते थे, उनकी स्थिति कमजोर होगी.

भारत जैसे विशाल और जटिल बनावट वाले देश की राजनीति में फिर से पहला स्थान बनाने के लिए जिस नेतृत्व क्षमता और सांगठनिक मजबूती की जरूरत है, आज की कांग्रेस में उसका स्पष्ट अभाव दिखता है. कांग्रेसी नेता आज भी पुरानी खामखयाली में रहते प्रतीत होते हैं कि परिवार और पार्टी का देश पर राज करने का जन्मसिद्ध अधिकार है; कि सत्ता घूम-फिर कर कांग्रेस के पास ही आएगी. वफ़ादारी का आलम यह है कि रणदीप सुरजेवाला जैसे लोग कांग्रेस के चीफ प्रवक्ता हैं, जो अपने संबोधन में भाजपा को हमेशा 'भाजप्पा' कहते हैं! 2014 और 2019 की कड़ी पराजय के बाद भी कांग्रेसी नेता और कार्यकर्त्ता पार्टी संगठन के लिए निरंतर कड़ी मेहनत करने को तैयार नहीं हैं. वहां, वरिष्ठ हों या जवान, प्राथमिक होड़ परिवार के प्रति वफ़ादारी को लेकर है. इस होड़ में कोई भी दूसरी पंक्ति में रहने को तैयार नहीं है. पार्टी छोड़ने वाले और अब ज्ञान बांटने वाले अश्वनी कुमार जैसे नेता भी परिवार के प्रति वफ़ादारी का प्रसाद पाते रहे हैं. 5 विधानसभा चुनाव परिणामों के तुरंत बाद हुई कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक से परिवार के प्रति वाफदारी का सत्य एक बार फिर स्पष्ट हो गया है.

कांग्रेस हाई कमान और उसके वफादार अलग-अलग अवसरों पर कुछ फौरी किस्म की गतिविधियां करके चमत्कारों की उम्मीद में जीते हैं. अगर 5 विधानसभा चुनावों के परिणाम कांग्रेस के पक्ष में आ जाते, तो सारा श्रेय हाई कमान को दिया जाता और मौजूदा वफादार असंतुष्टों पर धावा बोल देते. ग्रुप 23 के असंतुष्ट कहे जाने वाले नेता भी 'सोनिया लोयलिस्ट' ही हैं. सत्ता के अभाव में वे केवल शिकायत करना जानते हैं. ज़मीन पर और लगातार काम करने की न उनकी ट्रेनिंग है, न इच्छा. लिहाज़ा, कांग्रेस का लगातार बिखराव

जारी है. कारपोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ के बल पर राजनीति करने वाली दो धुर दक्षिणपंथी राजनीतिक पार्टियों - भाजपा और आम आदमी पार्टी (आप) - के विस्तार के पीछे कांग्रेस का बिखराव एक प्रमुख कारण है. यहां ध्यान दिया जा सकता है कि भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन और उसकी उपज आप के गठन के बाद से अभी तक क्षेत्रीय पार्टियों में आप की बड़ी घुसपैठ नहीं हो पाई है.

(2)

1991 में नई आर्थिक नीतियों की शुरुआत होने और 1992 में बाबरी मस्जिद का ध्वंस होने के बाद से कापोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ उत्तरोत्तर भारतीय राजनीति के आधार के रूप में जड़ जमाता गया है. उसके मुकाबले में नई अथवा वैकल्पिक राजनीति देश में पर्याप्त ताकत नहीं हासिल कर पाई. दो समाजवादी नेताओं - मुख्यधारा राजनीति के बाहर किशन पटनायक और मुख्यधारा राजनीति के भीतर चंद्रशेखर - ने कापोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ की राजनीति के बरक्स संविधान और समाजवाद के मूल्यों पर आधारित वैकल्पिक राजनीति खड़ी करने के प्रयास किए थे. वैकल्पिक राजनीति के प्रयासों की वह धारा देर तक सक्रिय, यहां तक कि प्रभावी बनी रही थी. कापोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ की राजनीति के घोड़े पर सवार 2004 में 'शाइनिंग इंडिया' का नारा बुलंद करके चुनावों में उतरी वाजपेयी सरकार की पराजय के पीछे वैकल्पिक राजनीति की धारा की गतिमानता प्रमुख कारण था.

लेकिन 'सोनिया के सेकुलर सिपाहियों' ने नवउदारवादी नीतियों के खिलाफ जनता के उस फैसले को सोनिया गांधी का चमत्कार घोषित कर दिया. मनमोहन सिंह, राहुल गांधी के राजनीतिक भविष्य के लिए निरापद होने के नाते, पार्टी के भीतर प्रधानमंत्री पद के लिए सोनिया गांधी की पसंद भी रहे हों, उनके चयन के पीछे विश्व बैंक जैसी वैश्विक संस्थाओं का हाथ भी था. अपने 6 साल के कार्यकाल में कारपोरेट पूंजीवाद के पथ पर जैसे वाजपेयी ने नई आर्थिक नीतियों के पुरोधा मनमोहन सिंह को निराश नहीं किया था, उसी तरह मनमोहन सिंह ने भी देश की पोलिटिकल इकॉनमी को विश्व बैंक, आइएमएफ, डब्लूटीओ, डब्लूइएफ आदि की धुरी पर मजबूती से जमा कर वाजपेयी को निराश नहीं किया. इस बीच भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के चक्रव्यूह में फंस कर कारपोरेट पूंजीवाद के विरोध की वैकल्पिक राजनीति के एक बड़े हिस्से ने दम तोड़ दिया.

राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) और तृणमूल कांग्रेस के अलग हो जाने के बावजूद 2014 के पहले तक कांग्रेस देश की पहले स्थान की पार्टी थी. भाजपा और आप कांग्रेस को कोसते हुए उसी के नेताओं/कार्यकर्ताओं/मतदाताओं को साथ मिला कर अपना संवर्धन कर रही हैं. पार्टी के भविष्य के प्रति निराश होकर कांग्रेस के कुछ नेता तृणमूल कांग्रेस में भी गए हैं. बची-खुची कांग्रेस परिवार के कब्जे में रहे, या पार्टी में अंदरूनी लोकतंत्र बहाल करके एक विकेन्द्रित एवं सामूहिक नेतृत्व विकासित करे, दोनों स्थितियों में 2024 के चुनाव में राष्ट्रीय पार्टी के तौर पर करीब 200 सीटों पर कांग्रेस ही भाजपा के मुकाबले में होगी. यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है, जिसे नज़रंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए. इनमें से अधिकांश सीटें फिलहाल भाजपा के पास हैं. इन सीटों पर कांग्रेस का मुकाबला तो तय है, लेकिन जीत इस बात पर निर्भर करेगी कि वह अपनी अंदरूनी कलह को किस रूप में निपटाती है.

जैसा कि ऊपर कहा गया है, कांग्रेस की अंदरूनी कलह का मसला पार्टी से बाहर के लोगों की अपेक्षाओं के साथ जुड़ा हुआ है. हाई कमान कांग्रेस पार्टी से की जाने वाली अपेक्षाओं को पहले स्थान पर रख कर विचार करेगा, तो पार्टी पर अपनी गिरफ्त कायम रखने की मंशा उसे छोड़नी होगी. कांग्रेस की मजबूती का एक रास्ता यह हो सकता है कि कांग्रेस से अलग हुईं राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी और तृणमूल कांग्रेस वापस कांग्रेस में आ जाएं. यह होगा तो कांग्रेस से भाजपा और आप में जाने वाले नेता-कार्यकर्त्ता भी वापस लौट सकते हैं. साथ ही आने वाले समय में कांग्रेस का बिखराव रुक सकता है. वैसी स्थिति में आगामी लोकसभा चुनावों में कांग्रेसनीत यूपीए भाजपानीत एनडीए को कड़ी टक्कर दे सकता है.

(3)

कांग्रेस के नेता आरएसएस/भाजपा के बरक्स कांग्रेस की विचारधारा की बात करते हैं. लेकिन उनके दावे में दम नहीं होता. भाजपा के बरक्स बार-बार 'आईडिया ऑफ़ इंडिया' की बात करने वाले शशि थरूर जैसे कांग्रेसी नेता यह क्यों नहीं देख पाते कि कारपोरेट पूंजीवाद का प्लेटफार्म भाजपा को कांग्रेस ने ही उपलब्ध कराया है. कांग्रेस के जो लोग भाजपा के याराना पूंजीवाद की जगह सभी पूंजीपतियों के लिए खेल का समतल मैदान उपलब्ध कराने की वकालत करते हैं, क्या वे नहीं जानते कि भारतीय संविधान पूंजीवादी व्यवस्था लागू करने के लिए नहीं बना है. वह भारत के समस्त नागरिकों को अपने सर्वांगीण विकास का समतल मैदान उपलब्ध कराता है.

नरसिम्हाराव के प्रधानमंत्रीत्व में वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 1991 में जब नई आर्थिक नीतियां लागू की थीं, तब भाजपा के शीर्ष नेता अटलबिहारी वाजपेयी ने कहा था कि कांग्रेस ने भाजपा का कारज सिद्ध कर दिया है. साम्प्रदायिकता के मामले में भी आज की कांग्रेस संविधान के नहीं, भाजपा के साथ है. यानि वह आरएसएस/भाजपा की साम्प्रदायिकता की बड़ी लकीर के पीछे अपनी छोटी लकीर लेकर चलती है. राहुल गांधी बार-बार कह चुके हैं कि वे निजीकरण\विनिवेशीकरण के खिलाफ नहीं हैं. यूपीए के वित्तमंत्री रहे पी चिदंबरम भी बार-बार हिदायत देते हैं कि लोकलुभावन योजनाओं पर धन-राशि खर्च करने के बजाय आर्थिक सुधारों की गति को तेज़ करना चाहिए. एक बार प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने संसद में आर्थिक नीतियों के पक्ष में नेहरू को उद्धृत किया, तो चंद्रशेखर ने उन्हें टोकते हुए कहा कि पूंजीवाद के पक्ष में नेहरू को उद्धृत करना मुनासिब नहीं है. नरसिम्हाराव और मनमोहन सिंह ने अमेरिकी कांग्रेस को संबोधित करते हुए गुहार लगाई थी कि वे गांधी के सपनों का भारत बना रहे हैं. नरेंद्र मोदी का नया अथवा निगम भारत भी गांधी के सपनों का भारत बताया जाता है. ऐसे में आरएसएस/भाजपा से अलग कांग्रेस की विचारधारा की बात करना बेमानी हो जाता है.

कांग्रेस को विचारधारा के मसले पर गंभीरता से विचार करना चाहिए. विचारधारात्मक रूप से अब वह भाजपा का विकल्प नहीं रही. बल्कि भाजपा 1991 में अवतरित कांग्रेस का विकल्प बन चुकी है. कांग्रेस एक मुकम्मल संगठन और मुकम्मल और सुस्पष्ट विचारधारा के बल पर भाजपा का विकल्प हो सकती है. मुकम्मल संगठन पार्टी में आतंरिक लोकतंत्र स्थापित करके हासिल होगा, और मुकम्मल विचारधारा संविधान को ईमानदारी से आत्मसात करके हासिल होगी. नवउदारवाद के 30 साल के अनुभव के बाद भी

अगर कांग्रेस यह मानती है कि वह संविधान को किनारे रख कर निजीकरण-विनिवेशीकरण की प्रक्रिया को जारी रखने के हक़ में है, तो यह बताए कि इस रास्ते पर वह भाजपा से कैसे अलग है? साथ ही यह भी बताए कि आरएसएस/भाजपा की उग्र साम्प्रदायिकता से लड़ने के लिए उसकी नरम साम्प्रदायिकता की लाइन कैसे उचित है? हिंदू धर्म के मामले को उस धर्म के लोगों को देखने देना चाहिए. किसी कांग्रेसी नेता का यह काम नहीं है कि वह बताए कि हिंदू धर्म क्या है?

(4)

यह कोई छिपी सच्चाई नहीं है कि भाजपा और आप कारपोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ का खुला खेल खेलती हैं. देश-विदेश में उनके समर्थकों की कमी नहीं है. देश के ज्यादातर प्रगतिशील और सेकुलर बुद्धिजीवी भाजपा पर धारासार प्रहार करते हैं, लेकिन आप के समर्थन में रहते हैं. बल्कि यह पार्टी भारत की जनता को उन्हीं की सप्रेम भेंट है. कांग्रेस छुप कर कारपोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ का खेल खेलना चाहती है. देहात में कहावत है, 'कुल्हिया में भेली नहीं फोड़ी जा सकती'. या तो कांग्रेस भाजपा और आप की तरह खुल कर वह खेल खेले; या खेल का अपना मैदान और नियम तैयार करे. 'ग्रैंड ओल्ड पार्टी' के लिए यह मुश्किल काम नहीं होना चाहिए.

दरअसल, कांग्रेस में मंथन पार्टी नेतृत्व और संगठन के साथ-साथ विचारधारा के सवाल पर भी होना चाहिए. किसी भी राजनीतिक पार्टी में विचारधारा नेतृत्व से अहम होती है. जो लोग विचारधाराहीनता अथवा विचारधारा के अंत की बात करते हैं, उन्होंने दरअसल कारपोरेट पूंजीवाद की विचारधारा को ही एकमात्र विचारधारा मान लिया है. और वे उसी विचारधारा की तानाशाही चलाना चाहते हैं. भारत के सन्दर्भ में ऐसे लोग संविधान-विरोधी हैं. विचारधारा के सवाल पर मंथन देश के प्रगतिशील और सेकुलर बुद्धिजीवी भी करें, तो उससे कांग्रेस और अन्य पार्टियों को मदद मिल सकती है. तब देश की राजनीति पर कसा कारपोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ का शिकंजा कुछ हद तक ढीला पड़ सकता है. लेकिन समस्या यह है कि कांग्रेस के समर्थक बुद्धिजीवियों तक को भाजपा और आप की 'तेजी' और 'ताज़गी' के सामने कांग्रेस की 'सुस्ती' और 'पुरानापन' बोझ लगते हैं.

अंततः फैसला कांग्रेस को करना है. आशा की जानी चाहिए कि कांग्रेस पार्टी के अंदर की कलह को इस तरह निपटाएगी कि पार्टी के बाहर की अपेक्षाएं काफी हद तक पूरी हो सकें.

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक हैं*)